

दलहन उत्पादन वृद्धि हेतु आधुनिक एवं नवोन्मेषी तकनीकें



**आनन्द कुमार¹, प्रकाश सिंह²,
दिनकर¹, संजय कुमार¹,
रवि रंजन कुमार³ एवं
तुषार रंजन⁴**

¹आनुवांशिकी एवं पौधा प्रजनन विभाग
²वानस्पतिक अनुसंधान इकाई, धनगढ़, बिक्रमगंज,
³आण्विक जीव विज्ञान एवं जेनेटिक इंजीनियरिंग विभाग भोला पासवान शास्त्री कृषि महाविद्यालय, पूर्णिया,
⁴आण्विक जीव विज्ञान एवं जेनेटिक इंजीनियरिंग विभाग बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर, बिहार

*अनुरूपी लेखक
आनन्द कुमार*

दलहन हमारे देश की खाद्य सामग्री में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जलवायु परिवर्तन के दौर में टिकाऊ खेती, मृदा की उर्वराशक्ति को कायम रखने और पोषण सुरक्षा में दलहनी फसलों का अति महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय कृषि पद्धति में दालों की खेती का महत्वपूर्ण स्थान है। दलहनी फसलें भूमि को आच्छाद प्रदान करती हैं जिससे भूमि का कटाव कम होता है। दलहनों में नेत्रजन स्थिरकरण का नैसर्गिक गुण होने के कारण वायुमण्डलीय नेत्रजन को अपनी जड़ों में सिंथर करके मृदा उर्वरता को भी बढ़ाती है। दलहनी फसलें हरी खाद के रूप में प्रयोग की जाती हैं जिससे भूमि में जीवांश पदार्थ तथा नेत्रजन की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है। दालों के अलावा इनका प्रयोग मिठाइयाँ, नमकीन आदि व्यंजन बनाने में किया जाता है। इन फसलों की खेती सीमान्त और कम उपजाऊ भूमियों में की जा सकती है। कम अवधि की फसलें होने के कारण बहुफसली प्रणाली में इनका महत्वपूर्ण योगदान है जिससे अन्न उत्पादन बढ़ाने में दलहनी फसलें सहायक सिद्ध हो रही हैं। भारत की प्रमुख दलहनी फसलों में चना, मसूर, खेसरी, मटर, राजमा की खेती रबी ऋतु में की जाती है।

सन् 2010 से पहले देश में दलहन का उत्पादन स्थिरता की स्थिति से जूझ रहा था और 140-150 लाख टन के आसपास बना हुआ था। 2010 के पश्चात दलहन में राष्ट्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन दर्ज किया गया और उत्पादन 192.5 लाख टन (2013-14) के रिकार्ड स्तर तक जा पहुंचा जो अभी तक का सबसे अधिक उत्पादन रहा है। यह शानदार उपलब्धि दलहन शोधकर्ताओं और दलहन उत्पादक कृषकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी है। इसने

शोधकर्ताओं एवं कृषकों को देश को दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में कार्य करने हेतु प्रोत्साहित किया है। वर्तमान में देश में दलहन सुनिश्चितता बनाए रखने हेतु प्रतिवर्ष लगभग 20-30 लाख टन दालों का आयात विदेशों से करना पड़ता है जो सरकारी खजाने पर काफी बोझ डालता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्र में दलहन उत्पादन बढ़ाने की दिशा में सतत् प्रयास की आवश्यकता है। इस दिशा में दलहनी फसलों का क्षेत्र विस्तार, जो कि अभी लगभग

40-50 लाख हैक्टर है, करने से भारत दलहन उत्पादन में अवश्य स्वावलम्बी बन सकेगा।

शाकाहारी भोजन में दलहनी फसलों का महत्वपूर्ण स्थान है। दलहनी फसलों में प्रोटीन की मात्रा अन्य धान्य फसलों की अपेक्षा 2-3 गुना अधिक पायी जाती है तथा इनमें प्रोटीन की मात्रा में 15 से 34 प्रतिशत तक विविधता पायी जाती है। प्रोटीन के साथ अन्य पोषक तत्व जैसे कार्बोहाइड्रेट, खनिज पदार्थ, विटामिन व अन्य पोषक तत्व

भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। लौह तत्व जो कि एनिमिया रोग का नाश करने में सहायक है, दलहनी फसलों में पाए जाते हैं। देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में लगभग एक दर्जन से भी अधिक दलहनी फसलें उगायी जाती हैं। मुख्य रूप से उगाई जाने वाली दलहनी फसलों में चना (41 फीसदी), अरहर (15 फीसदी), उड़द (10 फीसदी), मूंग (9 फीसदी), लोबिया (7 फीसदी), मसूर एवं मटर (5 फीसदी) हैं। इसके अलावा राजमा, कुल्फी, खेसारी, ग्वार इत्यादि अन्य दलहनी फसलें भी भारत में उगाई जाती हैं।

एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक देश में दालों की मांग 390 लाख टन के आसपास होगी। इस मांग को पूरा करने के लिए हमें 2.14 प्रतिशत की दर से विकास हासिल करना होगा। इसके अलावा 40-50 लाख हैक्टर नये क्षेत्रफल को दलहन उत्पादन में लाना होगा। इसके अतिरिक्त कटाई के बाद होने वाली हानि को रोकने के साथ 10 प्रतिशत अधिक बीज उत्पादन करना होगा। अनुसंधान एवं तकनीकी में मूलभूत परिवर्तन के साथ इसके प्रसारण और व्यापार को ज्यादा से ज्यादा बढ़ावा देना होगा। धान-गेहूं फसल पद्धति का 10.5 मीट्रिक हैक्टर क्षेत्रफल भी दलहन उत्पादन के

प्रयोग में लाना होगा। उसी तरह से पूर्वी भारत के क्षेत्र, जो धान की फसल लेने के बाद खाली रह जाता है, को भी दलहन उत्पादन में प्रयोग में लाना होगा। साथ में दलहनी फसलों को गन्ने बाजरा और ज्वार की दो पंक्तियों के मध्य बोनो का प्रावधान करना होगा। इससे 25 लाख हैक्टर अतिरिक्त क्षेत्रफल दलहन उत्पादन के प्रयोग में लाया जा सकेगा। जलवायु परिवर्तन आज के दौर में एक और चुनौती के रूप में उभर रहा है। तदनुसार दलहन शोधकर्ताओं को इन चुनौतियों से निपटने के लिए दलहनी फसलों के व्यापक विभिन्नताओं वाले प्रारूप के साथ तैयार रहना होगा।

दलहन उत्पादन में प्रमुख बाधाएँ

दलहनी फसलों में क्षमता के अनुरूप (1.2 से 2.0 टन) उत्पादन न मिल पाने के बाधक कारकों में दलहन उत्पादक क्षेत्रों में व्यक्ति जैविक एवं अजैविक कारक तथा सामाजिक एवं आर्थिक कारक प्रमुख हैं। सामाजिक एवं आर्थिक कारक प्रमुख हैं। जैविक कारकों में मुख्य रूप से रोगों एवं कीटों की बहुतायत इन फसलों की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। दलहनी फसलों में मुख्य रूप से लगने वाले रोगों में उकठा, जड़ विगलन, फफूंदी एवं

एस्कोकाइटा झुलसा चने की फसल को मुख्य रूप से प्रभावित करते हैं। अरहर में उकठा, बंध्य चितेरी (बांझपन), फाइटोपथोरा अंगमारी हानि पहुंचाते हैं। उड़द एवं मूंग में पीत चितेरी विषाणु, पत्र बूंदकी एवं चूर्णी कवक और मसूर में रतुआ, चूर्णी कवक अत्याधिक हानि पहुंचाते हैं। प्रमुख हानिकारक कीटों में अरहर एवं चना में फल भेदक, अरहर में फसली मक्खी, मूंग एवं उड़द में श्वेत मक्खी, हरा फुदका (जैसिड) तथा पर्ण जीवक (थ्रिप्स) आदि कीट अत्याधिक क्षति पहुंचाते हैं। मसूर में माहू तथा मटर में सेमफली मक्खी उत्पादन में हास के प्रमुख कारण हैं। दलहनी फसलों में खरपतवार के कारण भी उत्पादन में भारी हानि होती है। कुछ समय से दलहनी फसलों के उत्पादन में सूत्रकृमि भी एक गंभीर चुनौती के रूप में उभरा है।

अजैविक कारकों में मुख्य रूप से फसल पकते समय सूखे की स्थिति एवं उच्च तापमान, पौध वृद्धि के समय तथा फूल आने के समय शीत के प्रति अतिसंवेदनशीलता और मृदा की लवणता एवं क्षारीयता प्रमुख हैं। इन सभी कारणों से दलहनी फसलों में उत्पादकता स्थिर नहीं रहती है। फलतः दलहनी फसलों को निम्न उत्पादकता स्थिर नहीं रहती है। फलतः दलहनी

फसलों को निम्न उत्पादकतायुक्त तथा जोखिम भरी फसलों के रूप में देखा जाता है तथा इन्हें सीमांत किसानों द्वारा उगाया जाता है। किसान इनके सफल उत्पादकन के लिए वांछित लागत के प्रति उदासीन रहते हैं। इनके अतिरिक्त, अनुकूल बाजार परिस्थितियों का न होना, प्रभावी न्यूनतम समर्थन मूल्य का अभाव, सक्षम खरीद व्यवस्था का न होना एवं उत्पादन के लिए उदार ऋण नीति का अभाव भी दलहन उत्पादकों को हतोत्साहित करता है।

आधुनिक तकनीकी, इनकी सही समय पर किसानों को हस्तांतरण तथा किसानों द्वारा इनका अंगीकरण इन फसलों में वृद्धि के प्रमुख कारक हैं। शोधकर्ताओं के अथक प्रयास, सरकार की ओर से सकारात्मक पहल, विभिन्न विभागों की सक्रियता, नीति निर्माताओं की सकारात्मक सोच और किसानों की सक्रिय भागीदारी से यह वृद्धि दर प्राप्त हो पाई है। इन सभी कारणों के साथ-साथ अनुकूल वातावरण के प्रभाव को भी नकारा नहीं जा सकता। साथ ही दलहनी फसलों की उन्नतशील प्रजातियों का विकास, गुणवत्तायुक्त बीजों की उपलब्धता, फसल प्रबंधन एवं सुरक्षा तकनीक और अन्य सहयोगी विभागों की सक्रिय

भूमिका को भी नजर अंदाज नहीं जा सकता जो कुल मिलाकर दलहन उत्पादन को बढ़ाने के मुख्य आधार रहे हैं। दलहन फसलें भारतीय कृषि एवं पोषण सुरक्षा की रीढ़ मानी जाती हैं। चना, अरहर, मसूर, मूंग और उड़द जैसी दलहन फसलें प्रोटीन का प्रमुख स्रोत हैं। नई युग की आधुनिक उत्पादन तकनीकों को अपनाकर किसान दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता की ओर तेजी से अग्रसर हो रहे हैं।

उन्नत एवं रोग प्रतिरोधी किस्मों, समय पर बुवाई, बीज उपचार, संतुलित उर्वरक प्रबंधन और जैव उर्वरकों के प्रयोग से दलहन उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। राइजोबियम कल्चर के उपयोग से नाइट्रोजन स्थिरीकरण बढ़ता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और लागत भी कम होती है। ड्रिप सिंचाई, सूक्ष्म सिंचाई तकनीक, यंत्रीकरण तथा समेकित कीट प्रबंधन ने फसल नुकसान को कम किया है। साथ ही डिजिटल कृषि तकनीक, मौसम पूर्वानुमान और मोबाइल आधारित कृषि सलाह से किसान सही समय पर निर्णय ले पा रहे हैं।

सरकारी योजनाओं, न्यूनतम समर्थन मूल्य (और किसान उत्पादक संगठनों (के माध्यम से बाजार तक सीधी पहुँच मिलने से किसानों की आय में

वृद्धि हो रही है। इससे किसान न केवल आर्थिक रूप से सशक्त हो रहे हैं, बल्कि देश को दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने में भी योगदान दे रहे हैं। इस प्रकार, आधुनिक उत्पादन तकनीकों को अपनाकर दलहन उत्पादक किसान आत्मनिर्भरता की दिशा में मजबूत कदम बढ़ा रहे हैं और सतत कृषि विकास को बढ़ावा दे रहे हैं।

दलहन की आधुनिक उत्पादन तकनीक

मृदा का चयन एवं खेत की तैयारी

चना, मटर एवं मसूर की खेती अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट से चिकनी दोमट भूमि में सफलता पूर्वक की जा सकती है। खेत की मिट्टी का पी.एच. मान 6.5 से 7.5 के मध्य होना चाहिए। गेहू की तरह इन फसलों को बहुत अच्छी प्रकार से तैयार किए गए खेत की जरूरत नहीं होती है। एक गहरी जुताई के बाद कल्टीवेटर से खड़ी-आड़ी जुताई कर पाटा लगाकर बुआई हेतु खेत तैयार हो जाता है। चने के खेत में छोटे-मोटे ढेले रहने से पौधों का विकास अच्छा होता है। दलहनी फसलों की उतारा पद्धति से बुआई करने हेतु किसी भी प्रकार की कर्षण क्रिया की आवश्यकता नहीं होती। धान-चना /मसूर फसल प्रणाली में शून्य जुताई पद्धति से

चना, मटर एवं मसूर की बुआई लाभकारी पाई गई है।

उन्नत व अनुशंसित किस्में
विभिन्न दलहनी फसलों की व्यापक क्षेत्रों के अनुकूल उच्च उत्पादन क्षमता वाली प्रजातियों के इस्तेमाल से दलहनों की

उत्पादकता में आशातीत बढ़ोत्तरी हो सकती है। भारत में अभी भी 20-30 प्रतिशत किसान ही दलहनों की उन्नत किस्मों के बीज का इस्तेमाल कर रहे हैं। अतः इन फसलों की उन्नत कीट रोग प्रतिरोधी

किस्मों के बीज की समय पर उपलब्धता एवं किसानों द्वारा उपयोग किया जाना बेहतर उपज के लिए निहायत जरूरी है। बिहार के लिए चना, मसूर एवं मटर की प्रमुख उन्नत किस्में हैं:

उन्नतशील प्रजातियां

चना के उन्नत व अनुशंसित प्रजातियां समय से बुआई के लिये प्रभेद:

उन्नत प्रभेद	बुआई का समय	परिपक्वता अवधि दिनों में	औसत उपज (क्विं./हेक्टेयर)	विशेषताएँ
सबौर चना-1	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	130-135	22-24	उकठा, शुष्क जड़ विगलन स्तंभन (स्टन्ट) रोगों के प्रति मध्यम प्रतिरोधी, फली छेदक के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
जी.एन.जी. 2207	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	128-130	16-17	उकठा रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
बी. जी. 3043	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	127-134	16-17	उकठा रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
राज विजय चना 2023	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	125-128	15-16	यांत्रिक विधि से कटाई के लिये उपयुक्त
पंत चना 10	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	130-132	17-18	उकठा, रोगों के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
देर से बुआई के लिये प्रभेद :				
सबौर चना 3	1 से 15 दिसम्बर तक।	120-130	19-20	पछेली बुआई की स्थिति के लिए उपयुक्त किस्म, उकठा, जड़-गलन रोगों तथा फली छेदक कीट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
सबौर चना 2	15 दिसम्बर तक	115-120	18-19	पछेली बुआई की स्थिति के लिए उपयुक्त किस्म, उकठा, जड़-गलन रोगों तथा फली छेदक कीट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
जी.एन.जी. 2299	1 से 15 दिसम्बर तक।	116-120	14-15	उकठा के प्रति सहिष्णु
करन चना 20 (RSGD 1155)	1 से 15 दिसम्बर तक।	116-120	16	उकठा, शुष्क जड़ विगलन स्तंभन (स्टन्ट) रोगों के प्रति मध्यम प्रतिरोधी, फली छेदक के प्रति मध्यम प्रतिरोधी

मसूर के उन्नत व अनुशंसित प्रजातियां:

प्रजातियाँ	बुवाई का समय	पकने की अवधि (दिनों में)	औसत उपज (क्विं0/हे0)	अभियुक्ति
मसूर के उन्नत व अनुशंसित प्रजातियां :				
(1) पूर्णतय: अनुकूलित एवं अनुशंसित प्रजाति (छोटे दाने वाली)				
पी0 एल0 639	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	135-140	18-20	जड़ सड़न एवं उकठा रोग रोधी
पी0 एल0 406	25 अक्टूबर से 25 नवम्बर	130-140	18-20	हरदा एवं उकठा विल्ट सहिष्णु तथा उत्तरेा फसल के लिए उपयुक्त
एच0 यू0 एल0 57	25 अक्टूबर से 15 नवम्बर	125-130	20-25	जड़ सड़न एवं उकठा रोग रोधी
के0 एल0 एस0 218	25 अक्टूबर से 15 नवम्बर	120-125	20-25	हरदा एवं उकठा सहिष्णु
(2) पूर्णतय: अनुकूलित एवं अनुशंसित प्रजाति (बड़े दाने वाली)				
अरुण	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	120-125	18-20	हरदा एवं उकठा सहिष्णु

मल्लिका	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	130-135	20-22	दाना मध्यम आकार का और उकटा सहिष्णु
आई0 पी0 एल0 406	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	120-130	15-18	जड़ सड़न एवं उकटा रोग रोधी
(3) नव उन्नत प्रजाति				
पूसा अगेती मसूर	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	95-100	13-14	जड़ सड़न एवं उकटा रोग रोधी
आई0 पी0 एल0 220	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	120-125	14	जड़ सड़न एवं उकटा रोग रोधी
आई0 पी0 एल0 406 (अंगूरी)	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	130-140	15-18	जड़ सड़न एवं उकटा रोग रोधी
पी0 एल0 6	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	110-120	14-16	जड़ सड़न एवं उकटा रोग रोधी
पी0 एल0 8	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	120-130	15-16	जड़ सड़न एवं उकटा रोग रोधी
मटर के उन्नत व अनुसंधित प्रजातियां :				
श्रचना	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	135-140	20-25	लम्बा, चूर्ण रोग अवरोधी
अपर्णा	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	125-130	20-25	बौना किस्म, चूर्ण रोग रोधी
मालवीम मटर-15	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	125-130	20-25	बौना किस्म, चूर्ण रोग रोधी
पूसा प्रभात (की.डी.आर 23)	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	60-70 (हरी छीमी)100-105(दाना)	60-65(हरी छीमी) 12 -15(दाना)	मध्यम अवधि
राजमा के उन्नत व अनुसंधित प्रजातियां :				
पी.डी.आर.14 (उदय)	1 से 20 नवम्बर	110- 120	20-25	चितकबरा दाना
एच.यू.आर.15 (मालवीय)	1 से 20 नवम्बर	110- 120	18-20	उजाला दाना
अरहर के उन्नत व अनुसंधित प्रजातियां :				
आई पी ए 203	1 जुलाई - 31 जुलाई	240-280	22-23	बांझपन मोजेक रोग के प्रति प्रतिरोधी
आई पी ए 15 - 2 शा र दा	1 जुलाई - 31 जुलाई	190-210	22-23	उकटा, बांझपन मोजेक रोगों के प्रति प्रतिरोधी
राजेन्द्र अरहर -1	1 जुलाई - 31 जुलाई	200-220	15-16	बांझपन मोजेक रोग के प्रति प्रतिरोधी, उकटा, के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
राजेन्द्र अरहर-2	1 जुलाई - 31 जुलाई	250-255	25-30	उकटा, बांझपन मोजेक रोगों के प्रति मध्यम प्रतिरोधी,
खेसारी के उन्नत व अनुसंधित प्रजातियां :				
रतन	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	105-115	15-16	बड़ा दाना, नीला फूल, न्युरोटॉक्सीन (β -ODAP) की मात्रा -0.07%
म्हेतेओरा	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	105-115	15-16	बड़ा दाना, नीला फूल, न्युरोटॉक्सीन (β -ODAP) की मात्रा -0.074%
प्रतिक	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	110-115	15-16	छोटा दाना, न्युरोटॉक्सीन (β -ODAP) की मात्रा -0.109%
बिधान खेसारी-1	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर	110-112	15-16	उकटातथा पाउडरी मिल्ड्यू रोगके प्रति प्रतिरोधी किस्म



बीजोपचार:

बुआई से पूर्व मृदा जनित रोगों से बचाव के लिए बीजो को एफ.आई.आर. विधि से उपचारित करे। सबसे पहले केएन अथवा थीरम 2-5 से 3-0 ग्राम/ कि॰ग्राम॰ बीज से उपचारित करे। फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने हेतु राइजोवियम तथा पी. एस.वी. 15-20 ग्राम/ कि॰ग्राम॰ बीज से उपचारित करना चाहिए। कजरा पिल्लू से वचाव हेतु क्लोरपाइरीफास की 8 मि॰ली॰/ कि॰ग्राम॰ बीज उपचारित करे।

बीज दर एवं बुआई का समय

रबी दलहनों से अधिकतम उपज लेने के लिए सही समय पर इनकी बुआई करना आवश्यक होता है। अगेती बुआई से कीट रोगों का अधिक आक्रमण होता है क्योंकि बुआई के समय तापमान अधिक रहने से पौधों की असाधारण वृद्धि हो जाती है जिससे उपज में गिरावट हो जाती है। विलंब से बुआई करने पर दाना भरते समय तापक्रम बढ़ने से उपज और गुणवत्ता में भारी कमी हो जाती है। अतः इन फसलों की उपयुक्त समय पर बुआई करना लाभकारी रहता है। बुआई हेतु बीज शुद्ध, रोग तथा भैतिक क्षति मुक्त एवं जिसका अंकुरण क्षमता प्रतिशत 90-95 हो उसका प्रयोग करना चाहिए।

- चने की छोटे दाने वाली प्रजातियों (12-15 ग्राम/100दाने) हेतु बीज दर 50-60 कि॰ग्राम॰/हैक्टर तथा मध्यम व बड़े दाने वाली किस्मों (25 ग्राम/100दाने) हेतु 80-85 कि॰ग्राम॰/हैक्टर उचित रहता है। वरानी दशाओ में बुआई का उचित समय 15 अक्टूबर से 30 अक्टूबर तथा सिंचित दशाओ में 25 नवम्बर तक होता है।
- मंसूर के छोटे दाने वाली किस्मों हेतु बीज दर 40-45 कि॰ग्राम॰/हैक्टर तथा बड़ी दाने वाली किस्मों हेतु 55से 60 कि॰ग्राम॰/हैक्टर उपयुक्त होती है। उतेरा विधि से बुआई करने अथवा बुआई में देरी की अवस्था में बीज दर 15-20 प्रतिशत तक बढ़ा देनी चाहिए। सामान्यतः बीज की बुआई का उपयुक्त समय 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर होता है।
- मटर की छोटे दाने वाली प्रजातियों के लिए बीज दर 50-60 कि॰ग्राम॰/हैक्टर तथा बड़े दाने वाली प्रजातियों के लिए 80-100 कि॰ग्राम॰/हैक्टर उचित होता है। इसकी बुआई मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक की जाती है।
- राजमा की बुआई हेतु बीज दर 80-100 कि॰ग्राम॰/हैक्टर उपयुक्त होता है। अक्टूबर के द्वितीय पखवाड़े से मध्य नवम्बर तक इसकी बुआई कर लेनी चाहिए।
- अरहर की बुआई हेतु बीज दर 20 कि॰ग्राम॰/हैक्टर उपयुक्त होता है।
- खेसारी की बुआई हेतु बीज दर 45-50 कि॰ग्रा॰/हे॰ तथा पैरा फसल के रूप में 80-100 कि॰ग्रा॰/हे॰, के लिए उपयुक्त होता है।
इन दलहनी फसलों की बुआई कतारों में करने से निराई-गुड़ाई और खरपतवार नियंत्रण में सुविधा रहती है, बीज की मात्रा कम लगती है तथा उपज अधिक प्राप्त होती है। चना, मसूर, खेसारी में बुआई की दूरी 30 सेमी. 10 सेमी. रखें। बीज की बुआई 5-6 सेमी. से अधिक नहीं होनी चाहिए। पौध संख्या चना में 33-40 पौधे/वर्ग मी., मसूर में 80 पौधे/वर्ग मी. तथा मटर की ऊँची प्रजातियों हेतु 20-22 पौधे/वर्ग मी. तथा बौनी प्रजातियों हेतु 33-40 पौधे/वर्ग मी. संख्या उपयुक्त रहती है। धान के कटने के बाद सीड ड्रिल की सहायता से चना/मसूर/मटर की बुआई करने और धान की पुआल की पलवार खेत में छोड़ने पर मृदा

में नमी का पर्याप्त संरक्षण होता है और चना की उपज में वृद्धि होती है।

संतुलित मात्रा में उर्वरक प्रयोग

मृदा जांच उपरांत मृदा के उपलब्ध पोषक तत्वों के अनुसार देना चाहिए। सामान्यतयः 15-20 कि॰ग्रा॰ नेत्रजन, 40 कि॰ग्रा॰ फास्फोरस, 20 कि॰ग्रा॰ गंधक तथा 20 कि॰ग्रा॰ पोटाष प्रति हेक्टेयर की दर से खेत की अंतिम जुताई से पहले देना चाहिए। फली बनते समय या देर से बोई गयी फसल में 2: यूरिया के घोल का छिड़काव करने से उपज में वृद्धि होती है। सल्फर की कमी वाली मृदा में 15-20 कि॰ग्रा॰ जिंक सल्फेट तथा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग की सस्तुति की जाती है।

खरपतवार नियंत्रण

उत्पादकता में कमी को रोकने हेतु फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। चना फसल की बोआई के 30 - 60 दिनों तक खरपतवार फसल को अधिक हानि पहुँचाते हैं। ऐसा देखा गया है कि समय पर खरपतवार नियंत्रण न करने पर 40 - 50 प्रतिशत तक चना उत्पादन में कमी हो सकती है। खेत में खरपतवार नष्ट करने के लिए एक निंदाई बोआई के 30 दिन बाद एवं दूसरी 60 दिन बाद करनी चाहिए। रासायनिक नियंत्रण के लिए पेन्डीमेथालीन 30 ईसी (स्टाम्प)

750 मिली-1000 मिली. सक्रिय तत्व (दवा की मात्रा 2.5-3 लीटर) प्रति हेक्टेयर अंकुरण के पूर्व 500 - 600 लीटर पानी में घोल बनाकर फ्लेट फेन नोजल

सिचाई प्रबंधन

रबी दलहनी फसलें जैसे मसूर, चना एवं अन्य फसलों में हल्की भूमि में पहली सिचाई शाखा निकलते समय तथा दूसरी सिचाई फली बनते समय देने से उपज में बढ़ोत्तरी होती है। फूल बनते समय सिचाई नहीं करनी चाहिए अन्यथा फूलों के गिरने व पौधों की बढ़वार पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

फसल सुरक्षा

दलहनी फसलों में प्रमुख रूप से जैविक एवं अजैविक कारक ही उत्पादकता का प्रभावित करते हैं एवं उपज में कमी लाते हैं अतः समेकित रोग एवं कीट प्रबंधन के द्वारा जिसके अंतर्गत रोगराकधी प्रजातियों के स्वस्थ बीज का प्रयोग, अन्तकर्षण क्रियाओं में परिवर्तन, कवकनाशी तथा जैवनाशी तत्वों का प्रयोग सम्मिलित है के द्वारा उत्पादकता को स्थिर करके उपज को बढ़ाया जा सकता है।

- सभी दलहनी फसलों में बुआई के पूर्व रोगरोधि प्रजातियों का चयन एवं गर्मी की गहरी जुताई से मृदाजनित रोगों एवं सूत्र कृमि से होने वाली हानि से बचाव किया जा सकता है।

- समय पर बुआई उचित रहती है। कार्बोन्डाजिम + थीरम (1:2 ग्राम / कि॰ग्राम॰ बीज) अथवा टाईकोडर्मा + कार्बाक्सिन (4:1 ग्राम / कि॰ग्राम॰ बीज) से बीजोपचार करना चाहिए।
- खड़ी फसल में फलीभेदक से बचाव के लिए 4-5 यौन आकर्षण जाल प्रति हेक्टेयर की दर से लगाना चाहिए।
- चिड़ियों के बैठने के लिए “T” आकार की 30-40 प्रति हेक्टेयर के हिसाबसे अड्डे बनाये।
- फली भेदक की संख्या यदि 1-2 लार्वा / मीटर पंक्ति तक पहुँच जाए तो निबौली के 5 प्रतिशत सत् का प्रथम छिड़काव तथा द्वितीय छिड़काव डच् के 250 लार्वा समतुल्य प्रति हेक्टेयर की दर से तथा आवश्यकता पड़ने पर इन्डोक्साकार्ब (1 मि॰ली॰ प्रति लीटर पानी) का तृतीय छिड़काव करें।
- बुआई से पूर्व दलहनी फसलों में सूत्रकृमि सक्रमित भूमि में गर्मी में गहरी जुताई तथा निबौली के चूर्ण का 50 कि॰ग्राम॰/हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।
- रोगों एवं कीटों से बचाव एवं नियंत्रण के लिए फसल की नियमित निगरानी करना आवश्यक है। कीटों

के प्रकोप का पूर्वानुमान लगाकर 4-5 प्रति हेक्टर यौन आकर्षण जाल का प्रयोग करना चाहिए।

- फली मक्खी हेतु डाईभीथोएट (0-030) का प्रथम छिड़काव दीर्घ कालीन प्रजातियों में तथा द्वितीय एवम् तृतीय छिड़काव अल्पकालीन प्रजातियों में करना चाहिए।
- पत्तियों पर लगाने वाले फफूँदी जनित रोगों से बचाव के लिए बुआई के 1 माह पश्चात् आवश्यकतानुसार 0-050: कार्वेन्डाजिम या 0-025: थियोफेनट मिथाईल का छिड़काव करना चाहिए।
- मसूर फसल में अलसी के साथ अन्तर्सस्य (20:1) अथवा मिश्रित खेती (10:1) से उकठा रोग का प्रयोग कम किया जा सकता है।
- माह का प्रकोप होने पर 0-030: डाईमीथोएट का छिड़काव करना चाहिए।
- रतुआ रोग के नियंत्रण के लिए घूलनशील गंधक (0-2-0-30) या 0-020: मेन्कोजेब का छिड़काव

तथा रोग ग्रसित पौधों का उखाड़ कर फेक देना चाहिए। राजमा की फसल में माहू जो बीन सामान्य चित्तेरी विषणु के बाहक कीट होते हैं। एवं अन्य चूषक कीट के प्रभावी नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड 5 मि० ली०/10 ली० पानी की दर से फसल पर छिड़काव करना चाहिए।

- तना अंगमारी तथा जड़ गलन रोगों से बचाव हेतु खेतों में जल निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए तथा रोगग्रस्त पौधों का उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।

कटाई एवं गहाई

चना, मटर एवं मसूर की फसल कटाई हेतु किस्म के अनुसार फरवरी-मार्च में तैयार हो जाती है। जब 70-80 प्रतिशत फल्लियाँ भूरे रंग की हो जाएँ और पौधे पीले पड़ने लगे पक जायें तो फसल की कटाई करना चाहिए। देर से कटाई करने पर फलियों के चटकने से दाने खेत में बिखर जाते हैं। कटाई हॉसिये द्वारा

सावधानीपूर्वक करना चाहिए जिससे फलियाँ चटकने न पायें। काटने के बाद फसल को एक सप्ताह तक खलिहान में सुखाते हैं। इसके पश्चात् दाँय चलाकर या थ्रेशर द्वारा दाने अलग कर हवा में साफ कर लिये जाते हैं।

उपज

अनुकूल वातावरण होने तथा उपरोक्त सस्य तकनीकी अपनाने से चना, मसूर, खेसारी और मटर की शुद्ध फसल से क्रमशः 20-25 क्विंटल, 15-20 क्विंटल, 15-20 क्विंटल एवं 20-30 क्विंटल प्रति हेक्टर दाना उपज प्राप्त होती है। दानों के भार का लगभग आधा या तीन-चैथाई भाग भूसा प्राप्त होता है। काबुली चने की पैदावार देशी चने की अपेक्षा थोड़ी कम होती है। हरे मटर (फल्लियों) की पैदावार 100-125 क्विंटल प्रति हेक्टर तक ली जा सकती है। चना, मसूर एवं मटर के बीज को अच्छी तरह सुखाकर जब उनमें 10-12 प्रतिशत नमी रह, जाय तब उचित स्थान पर भंडारित करें अथवा अच्छा भाव मिलने पर बाजार में बेच देना चाहिए।